

## वर्णाश्रम में सामाजिक अवधारणा

डॉ० राजू राठौर  
अतिथि विद्वान्— (विषय—संस्कृत)  
शासकीय महर्षि अरविन्द महाविद्यालय  
गोहद— जिला भिण्ड (म०प्र०)

प्राचीन भारतीय—वाङ्मय के अध्ययन से विदित होता है कि भारतीयों का जीवन वर्णाश्रम में विभक्त था।<sup>1</sup> इस वर्णाश्रम व्यवस्था का तात्पर्य प्रत्येक प्राणी की इहलौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय की प्राप्ति थी। आश्रम—व्यवस्था के लक्ष्य की पूर्ति के लिए भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थचतुष्टय की स्थापना की गई थी। इन पुरुषार्थचतुष्टय को आश्रमों का नैतिक आधार माना गया है; क्योंकि प्राचीन ऋषि—मुनियों की धारणा थी कि जगत् का प्रत्येक जीव स्वभावतः सुख की प्रवृत्ति एवं दुःख की निवृत्ति चाहता है अर्थात् वह जन्म—मृत्यु के चक्र एवं सांसारिक भवभयबन्धन से निवृत्ति पाना चाहता है। जिससे उसे पुनः इस जगत् में जन्म न लेना पड़े।<sup>2</sup> इस प्रकार समस्त मानव समाज के सम्यक् कार्य सम्पादन को उद्देश्य मानकर प्राचीन ऋषि—मुनियों ने वर्ण—व्यवस्था की कल्पना की तथा स्मृतियों एवं अन्यान्य धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में सभी वर्णों का पृथक्—पृथक् कार्य निर्देश भी किया।

सामाजिक वर्ण—संगठन—प्राचीन भारतीय मनीषियों ने समाज को सुव्यवस्थित पद्धति से संवाहित करने के लिए सामाजिक—वर्णसंगठन को चार भागों में विभक्त किया था। इन वर्णों में ब्राह्मण का स्थान प्रथम, क्षत्रिय का स्थान द्वितीय, वैश्य का स्थान तृतीय एवं शूद्र का स्थान चतुर्थ था। ये वर्णचतुष्टय आश्रमचतुष्टय की परम्पराओं का पालन करते थे, जो वैदिककाल से लेकर अद्यपर्यन्त निरन्तर प्रवाहित हैं। भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था के आरम्भ का संकेत ऋग्वेद में दृष्टिगोचर होता है। इसमें समाज की पुरुष के रूप में कल्पना की गई थी कि उसका मुख ब्राह्मण, भुजाएँ क्षत्रिय, उरू—वैश्य तथा पैर—शूद्र हैं। इन अंगों के सदृश ही वर्णचतुष्टय की समाज में अवधारण रही है। इसी परम्परा को रामायण<sup>3</sup>, महाभारत<sup>4</sup>, उपनिषद<sup>5</sup>, स्मृति<sup>6</sup>, इत्यादि ग्रन्थों में स्वीकार किया गया है। वस्तुतः वर्ण पद की निष्पत्ति वृज् धातु से हुई है। इसका अर्थ—वरण करना<sup>7</sup> मनुष्य अपने स्वभाव एवं योग्यता के आधार पर अपने वर्ण का चयन करता है। प्रारम्भिक काल में यह वर्ण—व्यवस्था गुण—क्रमानुसार रही होगी। जैसा कि महर्षि बाल्मीकि ने रामायण में प्रतिपादित किया है कि कभी समस्त प्रजा का वर्ण एक ही था। परन्तु कालान्तर में गुण—कर्म के आधार पर वर्णों को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया। आचार्य मनु ने मनुस्मृति में यह प्रतिपादित किया है कि उस महातेजस्वी ने सृष्टि की रक्षा के लिए मुख, बाहु, जंघा तथा पैर से उत्पन्न होने वालों के लिए भिन्न—भिन्न कर्मों का निर्देश दिया।<sup>8</sup>

आश्रम संगठन का स्वरूप—प्राचीन ऋषियों ने मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को कर्म के अनुसार आश्रमचतुष्टय में विभाजित किया है— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, तथा संन्यास। इनके नामकरण तथा क्रम में धर्मशास्त्रियों में मतैक्य नहीं है। आपस्तम्बधर्मसूत्र के अनुसार गार्हस्थ, गुरुगेह, मुनिवृत्ति तथा वानप्रस्थ— ये चार अवस्थाएँ कही गई हैं। गौतम ने भी ब्रह्मचारी, गृहस्थ, भिक्षु एवं वैखानस— इन चार आश्रमों का वर्णन किया है।

स्मृतिकारों में सर्वप्राचीन मनु ने भी सभी का पृथक्—पृथक् प्रतिपादन किया है।<sup>9</sup> इस प्रकार सामान्यतः मानव की आयु को सौ वर्ष मानकर प्रत्येक आश्रम में पच्चीस वर्ष रहने का निर्देश दिया गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम में

सर्वप्रथम शिक्षाग्रहण करने की व्यवस्था है। ब्रह्मचारी उपनयन संस्कार के पश्चात् गुरुगृह में रहकर विद्याध्ययन करता था। आचार्य मनु के अनुसार गुरुग्रह में रहते हुए ब्रह्मचारी को अपनी इन्द्रियों को वश करके तपोवर्द्धन निमित्त समस्त नियमों का पालन करना चाहिए। महाभारत ने भी ब्रह्मचर्याश्रम को 'गुरुकुलवास' कहा है, उसमें प्रवेश करके बालक मनसा, वाचा, कर्मणा द्वारा ब्रह्मचर्य की सेवा-शुश्रूषा करता था।<sup>10</sup> आश्रमव्यवस्था के क्रम में गृहस्थाश्रम का दूसरा स्थान है, परन्तु महत्व की दृष्टि से इसका प्रथम स्थान है। इसका कारण यह है कि अन्य आश्रम इसी पर निर्भर हैं। अतः यही आश्रम सम्पूर्ण समाज का संचालन करता है। पुराणों में भी गृहस्थाश्रम को समस्त आश्रमों का स्रोत माना गया है। आचार्य मनु के अनुसार जिस प्रकार समस्त नदी-नद सागर में संस्थित हो जाते हैं, उसी प्रकार समस्त आश्रम गृहस्थाश्रम में समाहित हो जाते हैं।<sup>11</sup> आश्रम व्यवस्था के क्रम में वानप्रस्थ का तृतीय स्थान है। वस्तुतः जब व्यक्ति गृहस्थाश्रम में जीवन के महान् उत्तरदायित्वयुक्त कर्म को सम्पादित कर त्यागभाव से अपने सुयोग्य उत्तराधिकारी पर गृहभार सौंपकर त्याग के पथ पर अग्रसर होता है, तो वह वानप्रस्थ में प्रवेश करता है। जैसा कि आचार्य मनु का कथन है कि गृहस्थ जब यह देख ले कि उसकी त्वचा शिथिल पड़ गयी हो, केश श्वेत हो गये हों, पुत्र का भी पुत्र हो गया हो, तब वह सभी को त्यागकर वन की ओर प्रस्थान करे।<sup>12</sup> जीवन का अंतिम भाग संन्यासाश्रम के अन्तर्गत आता है। इसे चतुर्थ आश्रम भी कहा जाता है। वानप्रस्थ के पश्चात् संन्यास आश्रम का प्रारम्भ होता है। इस चरण में आत्मलीन हो जाना ही मानव जीवन की सार्थकता मानी जाती है। अतः सर्वकर्मफल का त्याग ही संन्यास है।<sup>13</sup>

वर्ण-आश्रम-विधान-समीक्षा- आश्रम का क्रम है-1. ब्रह्मचर्य, 2. गृहस्थ, 3. वानप्रस्थ, और 4. संन्यास। तथा पुरुषार्थ का क्रम है-1. धर्म, 2. अर्थ, 3. काम, और 4-मोक्ष। अस्तु। देखना अब यह है कि वस्तुतः इनका लगाव कैसा है। हमारा मत है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में धर्म की सिद्धि होती है। अर्थात् ब्रह्मचारी सभी प्रकार समझ जाता है कि धर्म की यथातथता क्या है और क्या है वास्तव में उसका सच्चा स्वरूप भी। इसी प्रकार 'गृहस्थ' में सिद्धि होती है 'अर्थ' की। 'गृही' को 'अर्थ' की चिन्ता है 'काम' की नहीं। अतः काम की सिद्धि होती है 'वानप्रस्थ' में। 'वानप्रस्थी' को ही अप्सरा का सामना करना पड़ता है न ? स्मरण रहे, यहाँ 'निवृत्ति' का आदर है कुछ 'प्रकृति' का सत्कार नहीं। 'त्याग' का आचरण है कुछ 'संभृत' का विधान नहीं। रहा 'संन्यास'। वह प्रत्यक्ष ही मोक्ष की सिद्धि का स्थान है। उसमें तो कोई विवाद नहीं। उसका अधिकार 'क्षत्रिय' तथा 'नारी' को भी है। परन्तु उसके आचरण में 'वर्ण' की मर्यादा अवश्य है। ब्रह्मचर्य और 'वानप्रस्थ' का कार्यक्षेत्र है 'अरण्य' तो 'गृहस्थ' और 'संन्यास' का 'आचार-क्षेत्र' है जनपद। 'जनपद' में 'गृही' रहता और 'यति' के सम्पर्क से सुष्ठु बनता है। इस प्रकार आश्रम जीवन में प्रथम-तृतीय एवं द्वितीय-चतुर्थ का मेल है।-वर्ण हो, 'आश्रम' हो, 'वर्ग' हो, कुछ भी क्यों न हो, सभी को होना है 'यज्ञ' के रूप में ही। 'वर्ण' की व्यवस्था 'समष्टि' की दृष्टि से विचारणीय है तो 'आश्रम' की 'व्यष्टि' की दृष्टि से। पहली में समाज व्यवस्थित रहता है तो दूसरी में 'व्यक्ति' वा जीव। अवस्था कोई भी क्यों न हो, पर जीव की कामना होती है कभी न कभी उससे मुक्ति की। इसी मुक्ति का स्थूल रूप प्रगट होता है 'मरण' में। 'मरण' को जो 'प्रकृति' कहा गया है उसका मर्म है 'पुरुषार्थ' में। 'जीवित' को 'विकृति' कहा गया। बात सच है कि विकृत विलास ही जीवन है। उस जीवन से मुक्त होने का साधन है 'आश्रम'! परन्तु देश-काल से बद्ध होने के कारण उसकी साधना होगी 'समष्टि' में। निदान 'जीवित' का आधार है-वर्णाश्रम।<sup>14</sup>

संदर्भ-संकेत

- |                            |                               |
|----------------------------|-------------------------------|
| 1. ऋग्वेद- 10/90/12        | 2. वृहदारण्यकोपनिषद- 6/2/15   |
| 3. बाल्मीकिरामायण- 3/14/38 | 4. महाभारत-शान्तिपर्व- 72/4-5 |
| 5. छान्दोग्योपनिषद- 5/10/7 | 6. मनुस्मृति- 1/31            |
| 7. निरुक्त- 2/3            | 8. मनुस्मृति- 1/87            |

9. मनुस्मृति- 6/87
10. महाभारत-शांतिपर्व- 69/19-20
11. मनुस्मृति- 6/90
12. मनुस्मृति- 6/1-2
13. श्रीमद्भगवद्गीता- 18/2, 5-6  
(दृष्टव्य- भर्तृहरि के शतककाव्यों का साहित्यिक एवं दार्शनिक अध्ययन- डॉ० कृष्णचन्द्र)
14. कालिदास-डॉ० चन्द्रबली पाण्डेय पृष्ठ-421-422प्रकाशक-मोतीलाल बनारसीदास- वाराणसी-1954ई०